

ऊंचे मंसूबे की असावधान प्रस्तुति

निरंजन सहाय

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य में पी.एच.डी., युवा आलोचक; शिक्षा, संस्कृति और साहित्य पर निरंतर लेखन, एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के सदस्य। विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति-पंडित उदय जैन महाविद्यालय, कानोड, उदयपुर में हिन्दी साहित्य के प्राध्यापक।

सम्पर्क :

इन्द्रप्रस्थ कॉलोनी, नीमच रोड, कानोड,
जिला-उदयपुर, राजस्थान
पिन 313604

पुस्तक समीक्षा में इस बार आधार प्रकाशन से छपी पुस्तक 'मुख्यधारा शिक्षा में दलित भेद' की समीक्षा है। राजस्थान के कुछ सरकारी विद्यालयों एवं अनुसूचित जाति समुदायों में विशाखा द्वारा किए गए शोध अध्ययन का यह पुस्तकाकार है।

दलित भेदभाव विरोधी तमाम संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद समाज में उनके साथ भेदभाव होता रहा है। स्कूल में बच्चों के साथ होने वाले भेदभाव को यह पुस्तक बखूबी हमारे सामने रखती है। यह पुस्तक सप्रमाण बताती है कि यह भेदभाव 'मान्य' से कहीं ज्यादा क्रूर है और दलित वर्ग के बच्चों को शिक्षा से कैसे अपवर्जित करने का काम करता है।

भारतीय समाज के वर्णवादी दुर्ग ने ज्ञान की दुनिया को घोषित/अघोषित रूप से उस वर्चस्ववादी तिलस्म में तब्दील कर दिया है, जहां राज्य की दलित आबादी की शिक्षा की कोई भी आधुनिक जनतांत्रिक पहल या तो दम तोड़ देती है या फिर वह इस कदर मद्धिम हो जाती है, गोया वह यथास्थितिवादी व्यवस्था के पक्ष में ही सक्रिय हुई हो। नतीजन शिक्षा में दलित विद्यार्थियों की भागीदारी के सरकारी सपने एक सीमा के बाद दम तोड़ने लगते हैं। जैसे वर्णवादी सोच भारत के संदर्भ में दलित विद्यार्थियों को प्रभावित करती है, कमोबेश वैसे ही नस्लभेद-रंगभेद अफ्रीकी-अमरीकी समाज के उस विद्यार्थी समुदाय को भी प्रभावित करता है, जो गोरे नहीं हैं। इस राष्ट्रीय और वैश्विक परिदृश्य के मद्देनजर विकास अध्ययन संस्थान (IDS) यूनिवर्सिटी ऑफ ससेक्स, यू. के. और नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एड्वान्स स्टडीज ने सामूहिक रूप से एक शोध परियोजना की शुरुआत फरवरी 2001 से शुरू की जो 2003 अक्टूबर में पूरी हुई। भारतीय संदर्भ में शोध के कार्यक्षेत्र के रूप में मध्यप्रदेश और राजस्थान के 16 स्कूल एवं अनुसूचित जाति के समुदाय क्षेत्र चुने गए। राजस्थान में 'विशाखा' और मध्यप्रदेश में 'एकलव्य' ने शोध के इस दायित्व का वहन किया। इस अध्ययन से संबंधित राजस्थान संबंधी शोध को हाल ही 'मुख्यधारा शिक्षा में दलित-भेद' शीर्षक से हिन्दी के प्रतिष्ठित प्रकाशक 'आधार प्रकाशन' ने प्रकाशित किया। पुस्तक के संपादक हैं भरत और राजाराम भादू।

'मुख्यधारा शिक्षा में दलित भेद' पुस्तक के लिए किया गया शोध बेहद मूल्यवान है। लेकिन शोध की प्रस्तुति में सावधानी नहीं बरती गई। कहना न होगा यदि प्रस्तुति के दौरान सावधानी बरती जाती तो यह पुस्तक मील का पत्थर साबित होती। पुस्तक के पूर्वकथन का पहला वाक्य है, 'यह अध्ययन भारत तथा दक्षिण अफ्रीका में शिक्षा में बच्चों की भागीदारी (इन्क्लूजन) होने और उनके अपवर्जन (एक्सक्लूजन) पर केन्द्रित है।' इसके बाद अनुसंधान के तीन उद्देश्यों का जिक्र करते हुए बताया गया है कि जाति और नस्ल के आधार पर जारी भेदभाव एवं उनके

आलोक में बनाई जाने वाली नीतियों के सिलसिले में अध्ययन हुए। यह भी जिक्र है कि, 'यह अनुसंधान भारत के तीन राज्यों (मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान) और दक्षिण अफ्रीका के तीन राज्यों (इस्ट केपटाउन, वेस्ट केपटाउन और क्वातुलु नाटाल) में किया गया'। लेकिन पूरी पुस्तक में अफ्रीका और भारत के अन्य राज्यों के अध्ययन का कोई जिक्र तक नहीं है। पुस्तक में राजस्थान के निवाई, रजवास, श्री गंगानगर और सुजावलपुर के छः राजकीय विद्यालयों एवं उनके परिवेश में मौजूद दलित-भेद को अध्ययन का आधार बनाया गया है। पूर्वकथन में यह स्पष्ट करना चाहिए था कि प्रस्तुत पुस्तक व्यापक अध्ययन के एक हिस्से को प्रकट करती है। जाहिरन ऐसा नहीं लिखा गया। उसी तरह पूर्वकथन में ही यह सूचना दी गई है कि, 'राजस्थान में 4 प्राथमिक, 2 उच्च प्राथमिक व 2 सैकेंडरी स्कूलों का चयन किया गया।' जबकि अध्ययन में छः स्कूल (राजकीय बालिका उच्च प्राथमिक स्कूल निवाई, राजकीय बालिका सीनियर सैकेंडरी स्कूल, निवाई, राजीव गांधी पाठशाला, रजवास, राजकीय प्राथमिक स्कूल, श्री गंगानगर, राजकीय माध्यमिक स्कूल श्री गंगानगर राजकीय उच्च प्राथमिक स्कूल, सुजावलपुर) शामिल हैं। पहली बार यह सूची 'स्कूलों की भौतिक स्थिति' अध्याय में पृष्ठ 48, 49 पर प्रस्तुत की गई है। पूर्वकथन में ही शुरुआती अनुच्छेद में भारत में अनुसंधान तीन राज्यों में होने का जिक्र है - मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में। यह जिक्र पृष्ठ 9 पर है, जबकि पृष्ठ 11 पर कहा गया है, 'भारत के संदर्भ में देखें तो इस शोध का कार्यक्षेत्र मध्यप्रदेश व राजस्थान राज्य के 16 स्कूल व अनुसूचित जाति के समुदाय क्षेत्र चुने गए। यानी एक स्थान पर कार्यक्षेत्र के रूप में तीन राज्यों का जिक्र है, जबकि दूसरे स्थान पर दो। इस तरह विरोधाभास अन्य स्थानों पर भी मौजूद हैं, जिनकी प्रसंगानुसार चर्चा की जाएगी।

शिक्षा में दलित भेद भारतीय संदर्भ में धर्मसंस्था द्वारा स्थापित वर्ण व्यवस्था से ही प्रेरित है, जिसने श्रम और ज्ञान में गहरी फांफ की वैधानिक परंपरा स्थापित की। पुस्तक धर्मसंस्था प्रेरित इस गठजोड़ की पड़ताल गहराई से नहीं करती। इस गठजोड़ को बेनकाब किए बिना पुस्तक के शोध और निष्कर्षों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करना संभव नहीं है। पहले अध्याय में राजस्थान के दलित शिक्षा के परिप्रेक्ष्य का विवेचन करते हुए भारत की उस सांस्कृतिक विरासत का भी जिक्र है, जिनके आलोक में दलित शिक्षा संभव हुई। अचरज की बात है, वर्ण व्यवस्था को सही मानने वाले सुधारवादी चिन्तक दयानंद सरस्वती का उल्लेख तो है, पर दलित और स्त्री शिक्षा की बुनियाद डालने वाले ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले के साथ ही एक भी ऐसे विचारक का उल्लेख तक नहीं है जिन्होंने वर्ण व्यवस्था को नकार दिया। इसे और भी स्पष्टता से

समझने के लिए प्रसंगवश राजेन्द्र यादव और सुभाष गाताड़े की विवेचना उद्धृत की जा सकती है-

1. 'हिन्दू मनीषा की इस दरिद्रता का कारण औरों की तरह मुझे भी वह वर्ण व्यवस्था लगती है जहां ज्ञान और चिन्तन पर सिर्फ एक वर्ग का अधिकार था। शेष समाज को इससे वंचित रखा गया और समग्र समाज की मेधा को सिर्फ अपने लिए खण्डित और बन्दी बना दिया गया। यही नहीं, स्त्रियों और शूद्रों को ज्ञान की बात सुनने या करने पर मृत्युदण्ड तक का प्रावधान बनाया गया। ज्ञान की ऊंचाइयों में इस वर्ण व्यवस्था ने श्रम को अपने जीवन से हटाकर दूसरों के जिम्मे डाल दिया। यह परोपजीवी और अनुत्पादक वर्ग हाथ से काम करने को सबसे घृणास्पद मानता था। ... जहां श्रम और ज्ञान का इस तरह विभाजन हो, जैसा हमारे यहां रहा है, वहां चीजें समग्रता में कैसे विकसित हो सकती हैं ? जिनके पास ज्ञान था वे हाथ से काम नहीं करना चाहते थे और जिनके पास श्रम था उन्हें ज्ञान के वर्जित क्षेत्र में प्रवेश नहीं था। यानी ब्राह्मण बैठे-बैठे मंत्र बना सकते थे, यंत्र नहीं : क्योंकि यंत्रों में श्रम और हाथ लगाने पड़ते हैं।' (हंस, अप्रैल 2004, पृ.सं. 5)

2. '1848 में स्त्रियों-शूद्रों-अतिशूद्रों के लिए स्कूल की शुरुआत करके महात्मा ज्योतिबा फूले तथा उनकी पत्नी सावित्रीबाई फूले इस रेडिकल धारा की नींव डालते दिखते हैं। उसके बाद सौ सालों तक अचिरल चली इस धारा में कई सारे नाम चमक उठते हैं जो अपने समझौता विहीन संघर्ष और प्रयासों से उसी मार्ग को और रोशन करते हैं - फिर वह चाहे ताराबाई शिन्दे हों, अपनी रियासत में शूद्रों-अतिशूद्रों के लिए शिक्षा तथा रोजगार के अवसरों में आरक्षण लागू करने वाले दूरदेश राजा शाहू महाराज हों, तमिलनाडु के ज्योतिभास हों, वर्तमान केरल में जन्मे दलितों के नेता अय्यनकली हों, स्वाभिमान आन्दोलन की नींव रखने वाले रामास्वामी नायकर हों, संयुक्त प्रान्त के स्वामी अछूतानन्द हों या सबसे बढ़कर दलितों के अपने स्वायत्त आन्दोलन का आगाज करने वाले बाबा साहेब अंबेडकर हों। ध्यान देने की बात है ये सभी विचारक अलग-अलग दौर में अपने-अपने तरीके से शिक्षा में गैर-बराबरी के खिलाफ संघर्षरत होते हैं, पर एक विषय पर इनकी राय एक है - वह है ब्राह्मणवाद का विरोध और शिक्षा संसार में जाति प्रथा समाप्ति का सवाल।' (आर्यकल्प, 28 अप्रैल 27 अगस्त, 2003 पृ.सं. 50)

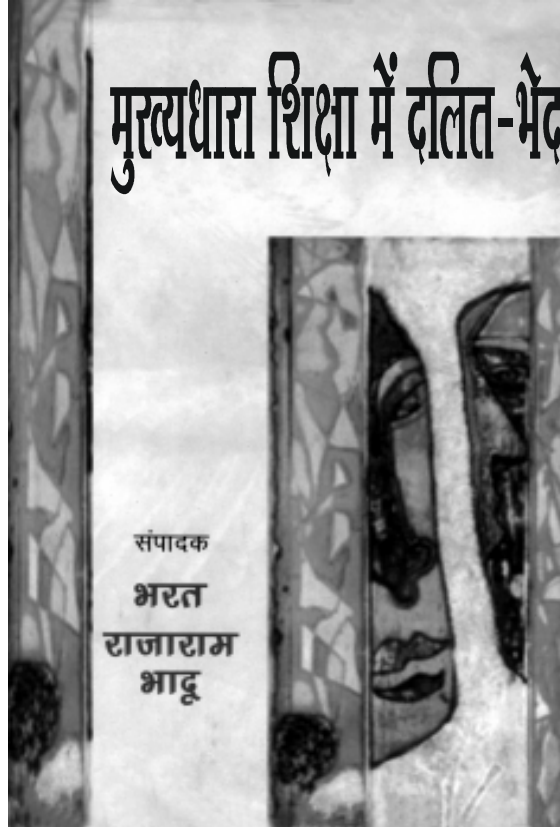
उसी तरह पूरी पुस्तक में पाठ्यपुस्तकों में जारी सवर्ण वर्चस्व एवं दलित दृष्टि की उपेक्षा का भी जिक्र नहीं है। जाहिर है इस प्रसंग के बिना भी पुस्तक की केन्द्रीय चेतना के व्यापक परिदृश्य को समग्रता में समझना मुमकिन नहीं है। 'परिप्रेक्ष्य' के अगस्त 2004 अंक में ऋतुबाला ने राजस्थान, बिहार, हरियाणा एवं दिल्ली की

पाठ्यपुस्तकों का व्यापक विश्लेषण करते हुए इस मुद्दे पर बेहद मूल्यवान काम किया है।

अब पुस्तक में शामिल अध्यायों को देखा जाए। 'राजस्थान: दलित शिक्षा का परिप्रेक्ष्य' अध्याय में राजस्थान की शिक्षा को तीन विरासतों के आलोक में देखने का प्रयास किया गया है - 1. रियासत राज 2. ब्रितानी हुकूमत और 3. आजादी के बाद भारत में। अध्याय यह बताता है कि रियासत काल शिक्षा के संदर्भ में लगभग उदासीन रहा। दलित शिक्षा में योगदान के मद्देनजर ब्रितानी हुकूमत के समय ईसाई मिशनरियों और आर्य समाज के अवदानों की चर्चा की गई है। इसे खासतौर पर रेखांकित किया गया है कि 1869 में जब पहली बार मेहतर बालकों को अजमेर के एक मिशनरी स्कूल में दाखिला दिया गया तब सवर्ण समाज ने प्रतिकार स्वरूप स्कूल से अपने बच्चों को निकाल लिया। ब्रितानी हुकूमत और देशी रियासतों के खिलाफ उठे जनप्रतिरोध ने शिक्षा को भी अपने एजेंडे में शामिल किया। 1920 से 1960 तक की शिक्षा को समाज परिवर्तन से संबंधित एक क्षेत्र बताया गया है और उसके बाद राज्य शिक्षा की जिम्मेदारी ले लेता है, यह विश्लेषित किया गया है। दूसरे अध्याय 'राजस्थान का शैक्षिक परिदृश्य एवं अध्ययन क्षेत्र' में राजस्थान में शिक्षा के सार्वजनीकरण, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को शिक्षा के लिए चलाई गई सरकारी योजनाओं का वर्ष

1980-81 से 2002 तक की अवधि का आकलन किया गया है। साथ ही अध्ययन के लिए चयनित क्षेत्र श्रीगंगानगर एवं टोंक जिले की जाति आधारित सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के प्रसार का विशेष मूल्यांकन भी किया गया है। तीसरे अध्याय 'स्कूल समुदायों की जाति संरचना और अंतर्विरोध' में अध्ययन में शामिल स्कूलों के शहरों की दलित बस्तियों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पृष्ठाधारों का विश्लेषण है। अध्याय के आरंभ में कुछ उद्धरण दिए गए हैं जो सवर्ण हिन्दू और दलितों के न सिर्फ रिश्ते को प्रकट करते

हैं, बल्कि उस इतिहास की पड़ताल की भी कोशिश करते हैं, जिसमें दलितों के प्रति अन्याय, अपवर्जन, बहिष्करण के दर्शन को सवर्णों द्वारा एक धर्मसम्मत और आदर्शसम्मत विचार करार दिया गया। लेकिन उद्धरणों को देते समय स्रोत देने की जहमत नहीं उठायी गई। जैसे 'हरिजन से दलित' उपशीर्षक के साथ उद्धृत पूरा अनुच्छेद 'दक्षिण भारत के कर्नाटक भगवान की औलाद' 'सामन्ती जाति व्यवस्था के विरुद्ध राजस्थान के दलितों का मुक्ति संघर्ष,' संपादक - कमलकान्त प्रसाद, डॉ. प्रकाश लुईस, भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली 2001, पृ. सं. 32-33 से लिया गया है, संकलित लेख का शीर्षक है 'दलितों के खिलाफ गैर दलितों का बहुआयामी आतंक', लेखक हैं - बाबूराम गेंवा। इसी पुस्तक के हरीश कुमार सारण और जयप्रकाश वाल्मीकि के निबंधों से भी उद्धरण लिए गए हैं, लेकिन संदर्भों के उल्लेख नहीं दिए गए। 'स्कूलों की भौतिक स्थिति' अध्याय में अध्ययन क्षेत्रों के स्कूलों के इतिहास, अवस्थिति, शिक्षकों की संख्या, स्कूलों में बच्चों का नामांकन और ठहराव के सत्रवार आंकड़े विश्लेषण सहित प्रस्तुत किए गए हैं। 'स्कूलों का परिवेश और कार्य संस्कृति' अध्याय का पहला वाक्य है, 'राजीव गांधी पाठशाला नयावास में दण्ड और भय के आधार पर अनुशासन कायम किया जाता है।' जॉन होल्ट की पुस्तक 'असफल स्कूल' में यह जिक्र है कि हमारे स्कूल में दो विधियों से चलते हैं



- दंड और पुरस्कार। 'मुख्यधारा शिक्षा में दलित भेद' के संपादकों ने स्कूल के दंडों का उल्लेख तो किया है, पर पुरस्कार के लालच का नहीं। यह आसानी से देखा जा सकता है कि कैसे स्कूलों में दंड और पुरस्कार के संदर्भ में भी सवर्ण-दलित भेद सक्रिय होते हैं। अध्याय में अध्यापन का जिक्र करते हुए विषयवस्तु से संबंधित किसी प्रसंग या संदर्भ का विवेचन नहीं है। पर निवाई के वाल्मीकि बच्चे की जिस बेबाकी को शोधकर्ता ने नोट किया है, वह बहुत मार्मिक है। गोपाल को पढ़ने की इच्छा है, पर पारंपरिक स्कूल की सवर्ण मानसिकता उसे इस परिधि से बाहर रखती है। वह दुहरे अभिशाप का शिकार है। यदि वह कचरा बीनकर नहीं कमाए तो घर खर्च

सितम्बर-अक्टूबर, 2007/35

चलना मुश्किल है। पर वह पढ़ने की लालसा रखता है। वह शोधकर्ता से कहता है, 'आप यहां स्कूल खोल लो तो मैं पढ़ूंगा, पर पीटना मत। वहां स्कूल में तो नहीं जाऊंगा। काम पर भी तो जाना पड़ता है।' पाठ्यक्रम की दो पृष्ठों में चर्चा के दौरान यह विश्लेषित करने की जहमत नहीं उठायी गई है कि पाठ्यक्रम कैसे दलित भेद को बढ़ावा दे रहे हैं। वे सवर्ण वर्चस्व की दिशा में कैसे सक्रिय हैं। इसकी चर्चा तक नहीं है।

'स्कूल, शिक्षक और समुदाय के अन्तर्सम्बन्ध' अध्याय में, समुदाय - स्कूल संबंध, शिक्षक और समुदाय स्कूल-शिक्षा समिति के माध्यम से स्कूल शिक्षक और समुदाय के अन्तर्संबंधों का विश्लेषण किया गया है। शिक्षक और शिक्षिका दलित अभिभावकों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हैं, यह शोध के दौरान स्पष्ट हुआ। अभिभावकों के नजरिए में भी फर्क है। जहां सवर्ण अभिभावकों को स्कूल से शिकायत नहीं है, वहीं दलित अभिभावक मानते हैं कि स्कूल में जातीय भेदभाव सक्रिय है। समुदायों के बारे में अध्यापक/अध्यापिकाओं की दृष्टि लगावपूर्ण नहीं है। शोधकर्ता एक अध्यापिका का उदाहरण देते हैं, जो कहती है, 'हमारा काम स्कूल में बच्चों को पढ़ाना है, उनके घर-घर जाकर उन्हें समझाना नहीं। सरकार तो उल्टी गंगा बहाती है। प्यासा कुएं के पास जाता है या कुआ प्यासे के पास। लोगों को अपने बच्चे पढ़ाने हैं तो स्कूल में आकर भर्ती कराएं। हम घर-घर जाकर उनके हाथ जोड़ें, ये कोई ठीक बात है क्या? शिक्षक की कोई इज्जत ही नहीं रही।' एक दूसरी अध्यापिका कहती है, 'समुदाय के लोग स्कूल में क्या कर सकते हैं। स्कूल के बारे में तो जो कुछ करना है वह हमें ही करना है। वैसे भी अधिकतर बच्चों के मां-बाप अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे हैं, वे हमें क्या राय दे सकते हैं।' विद्यालय प्रबंधन समिति के गठन में भी दलित भेद सक्रिय है, 'इस समिति का अध्यक्ष बनाने में लगता है कि भेदभाव बरता गया है। समिति के अध्यक्ष जटसिक्ख हैं, जबकि गांव की सरपंच महिला हैं। लेकिन दलित वर्ग की होने के कारण इसे अध्यक्ष नहीं बनाया गया है।' धड़ल्ले से फर्जी बैठक की कार्यवाहियां रजिस्टर में दर्ज होती हैं, इसे भी शोधकर्ताओं ने नोट किया। भेदभाव के एक निर्मम प्रसंग का अध्याय में उल्लेख है। वाल्मीकि समाज के एक लड़के कृष्णा की अध्यापिका द्वारा पिटाई के बाद पहले कान के पर्दे फटे, फिर उसकी मौत हो गई। मौत के बाद उसके दूसरे भाई बहनों को मैडम ने स्कूल से निकाल दिया, '1997 में बंटी पांचवीं में व पिंकी और सोनू तीसरी में पढ़ रहे थे। तब मैडम ने स्कूल से बच्चों को यह कहकर निकाल दिया कि वह एक तो मर गया, कहीं तुम भी मेरे सिर न आ जाओ। पढ़ लिए तुम,

अपने घर बैठो। शीला ने भी स्कूल में एक बच्चे को खोने के बाद अन्य बच्चों को स्कूल भेजने पर जोर देना छोड़ दिया।'

'शिक्षण प्रक्रिया और बच्चों की सहभागिता' अध्याय में अध्यापक-अध्यापिकाओं के उस दरिद्र अध्यापन शैली के विरोधाभासों को तार्किकतापूर्ण एवं तथ्यात्मक विवरणों के साथ उभारा गया है, जिसके चलते मौजूदा शिक्षण-प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सहभागिता नहीं के बराबर है। सवर्ण विद्यार्थी तो थोड़े सहभागी बनते या बनाए भी जाते हैं, पर दलित इस प्रक्रिया से बिल्कुल बाहर हैं। सहभागिता न होने के अन्य कारणों की भी अध्याय में छानबीन की गई है। शोधकर्ताओं ने सुजावलपुर उच्च प्राथमिक विद्यालय, राजीव गांधी पाठशाला, रजवास, राजकीय बालिका उच्च प्राथमिक स्कूल, निवाई में कक्षाओं के मुकाबले कम अध्यापक-अध्यापिकाओं को पाया। लिहाजा यह सामान्यतः होता था कि कई कक्षाएं एक साथ बैठा दी जाती थीं। शिक्षक/शिक्षिका परिवेश, अनुभव और विद्यार्थी के निजी संसार से अध्यापन को एकदम विमुख रखते पाए गए। शोधकर्ता 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र, पाउलो फ्रेरे का उल्लेख करते हुए इस नीरस प्रणाली को और भी स्पष्ट करते हैं, जहां शिक्षक-शिक्षिका को सर्वेसर्वा माना जाता है और विद्यार्थियों को निष्क्रिय ग्राहक। अंत में इस प्रक्रिया के बेहद मौजूं पक्ष की तरफ शोधार्थी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, इस शिक्षण-प्रक्रिया में एक विचारधारात्मक उद्देश्य छिपा होता है अक्सर जिसे शिक्षक भी पहचान नहीं पाते और वह है विद्यार्थियों को निरुपाय विश्वासी बनाकर उन्हें दमन से भरे इस संसार के साथ समायोजन के लिए तैयार करना।'

'स्कूलों में लैंगिक और जाति भेद' अध्याय को पुस्तक के केन्द्रीय दर्शन या सरोकार को प्रकट करने के लिहाज से सबसे महत्वपूर्ण अध्याय मान सकते हैं। अध्ययन में शामिल शिक्षक/शिक्षिकाओं के पूर्वग्रही होने की रूढ़ियों का विश्लेषण परक मूल्यांकन करता है। अधिकांश शिक्षा संस्थान सवर्णों की बस्ती में हैं, जहां अध्ययन के लिए जाने वाले विद्यार्थियों के लिए जातिवाचक संज्ञा और व्यंग्य तथा प्रताड़ना की भाषा स्कूल मार्ग से ही शुरू हो जाती है। स्कूल के शिक्षक जो सवर्ण वर्ग से हैं तथा जिनमें सवर्ण मानसिकता कट्टर तरीके से सक्रिय है, वे दलित विद्यार्थियों के साथ भेदभाव जारी रखते हैं। पुस्तक में इस सिलसिले में अनेक प्रसंगों का उल्लेख है, जैसे - 'शोधकर्ताओं ने अवलोकन के दौरान देखा कि शिक्षक दलित बच्चों के साथ सख्ती से पेश आते थे। बलराम वाल्मीकि के फीस की रसीद के बारे में पूछने पर पी.टी.आई. ने उसकी पिटाई कर दी। वहीं अशोक शर्मा ने महिला शिक्षक से कक्षा

में अभद्र व्यवहार किया तो पी.टी.आई ने कुछ नहीं किया। कक्षा में सर्वाधिक टीका-टिप्पणी जितेन्द्र व गंगाराम करते हैं। फिर भी उन्हें इस संबंध में कभी सजा नहीं मिली। परन्तु यदि कोई भी वाल्मीकि बच्चा बोलता है तो शिक्षक उसे सजा दिए बगैर नहीं छोड़ते। मनमोहन वाल्मीकि बताता है, 'इनके जितना बोलना तो दूर की बात है भैया जी, यदि इनका आधा भी बोल लें तो ये हमें स्कूल से ही बाहर निकाल देंगे।' शिक्षक वाल्मीकि बच्चों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। वे बताते हैं कि ये नहीं पढ़ेंगे क्योंकि इनकी तो नगर परिषद में झाड़ू लगाने की नौकरी लग ही जाएगी।'

लैंगिक भेद भी जबर्दस्त ढंग से सक्रिय है। दलित लड़कियां दुहरे अभिशाप का शिकार रहती हैं। आर्थिक पृष्ठाधार के साथ ये कड़वी सचाइयां जुड़कर ड्रॉप आउट विद्यार्थियों की संख्या में खासा इजाफा करती हैं। ऐसे प्रसंगों का भी अध्याय में उल्लेख है। खेल के मैदान में भी दुराग्रही ग्रंथि सक्रिय है। स्कूल के ड्रॉप आउट विद्यार्थियों के विश्लेषण से यह बात बखूबी प्रकट होती है। 'वंचित समुदायों के लिए शिक्षानीतियों' अध्याय में सर्वे के नतीजों का विश्लेषण किया गया है। विभिन्न सरकारी योजनाओं-निःशुल्क पाठ्य-पुस्तक वितरण योजना, प्रवेशोत्सव कार्यक्रम, राष्ट्रीय पोषाहार योजना, ग्राम प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता समिति, स्कूल प्रबंधन समिति, छात्रवृत्ति, शिक्षा आपके द्वारा आदि के क्रियान्वयन और उनकी उपलब्धियों का भी विश्लेषण किया गया है। शोधार्थियों के निष्कर्ष 'अध्ययन के निष्कर्ष व अनुशांसाएं' में प्रस्तुत हैं। अध्याय का अच्छा पक्ष है, अध्ययन में अनुशासित रणनीतियां, इनमें कुछ का यहां उल्लेख किया जा सकता है-

- शिक्षकों के दृष्टिकोण में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है।... आमुखीकरण कार्यक्रम आयोजित करने की आवश्यकता है, जिससे वे धर्म व लिंगभेद मूलक आग्रहों व मान्यताओं से मुक्त हो सकें। शिक्षक बच्चे की व्यक्ति इयत्ता को सम्मान दे सकें।

- स्कूल में रचनात्मक प्रक्रियाओं के जरिए जनतांत्रिक और सृजनाशील संस्कृति को विकसित करने की आवश्यकता है।

- बीच में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों में दलित बच्चों, विशेषकर बालिकाओं की संख्या ज्यादा है। ...ऐसे में आवश्यक है कि इन बच्चों के लिए आगे शिक्षा की विशिष्ट व्यवस्था की जाए ताकि ये प्रारंभिक स्तर तक की शैक्षिक उपलब्धियां हासिल कर सकें व प्राप्त ज्ञान को जीवन व्यवहार से जोड़ सकें।

- दलित भेद का उन्मूलन जाति व्यवस्था की समाप्ति से जुड़ा मसला है। इसके लिए सवर्णों की मानसिकता और मान्यताओं

में भी बदलाव लाना होगा। वे दलितों की व्यक्ति अस्मिता को मान्यता दें, तभी उनके व्यवहार में भी परिवर्तन लक्षित होगा।

परिशिष्ट में 'स्कूली बच्चों के अनुभव' 'गैर स्कूली बच्चों की दुनिया, स्कूली बच्चों के पालकों का नजरिया', 'गैर स्कूली बच्चों के बालकों की बेबसी' और 'शिक्षकों का दृष्टिकोण और कार्यशैली' से संबंधित विभिन्न साक्षात्कार संकलित किए गए हैं।

पुस्तक में शब्दों के मुद्रण संबंधी अशुद्धियां, वाक्य गठन की असावधानियां, तथ्यों की अशुद्धि जैसी अनेक सीमाएं हैं। लगता ही नहीं कि 'आधार प्रकाशन' से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है। आधार प्रकाशन की पुस्तकें विषय-वस्तु की गुणवत्ता और प्रस्तुति के लिहाज से उल्लेखनीय रही हैं, पर प्रस्तुत पुस्तक इसका अपवाद है। 'ढांचे', 'ढोंग', 'टेबिल', 'अस्तित्व', 'गेहूँ', 'पाठेत्तर', 'झाड़ू', 'और' की जगह 'ओर', 'चमड़े', 'पिछड़ापन', चोट लगने की 'आशंका', की जगह 'संभावना', '2000' की जगह '200' जैसी असावधानियां आसानी से देखी जा सकती हैं। उसी तरह कुछ अन्य असावधानियां भी गौरतलब हैं - पृष्ठ 58 पर शिक्षक हमेशा कुर्सी पर ही बैठती हैं, वाक्य गठन की अशुद्धि का एक उदाहरण - पृष्ठ 73 पर 'ये नाच-गान व नृत्य में हिस्सा लेती हैं'। तथ्यात्मक अशुद्धि, पृष्ठ 45 पर 'बिहारी लोग नहर पर जाकर अपने समूह में त्योहार मनाते हैं।' वाक्य गंगानगर के शुगर मिल कॉलोनी की बाशिन्दों में एक वर्ग के धार्मिक अनुष्ठान को बताने के लिए प्रस्तुत किया गया है। कहना न होगा यह वाक्य भ्रम फैलाता है। इसे इस तरह समझा जाए - राजस्थान में जलझूलनी एकादशी के दिन मंदिरों से देवी-देवताओं की मूर्तियां जलाशयों में ले जाकर नहला-धुला कर लाई जाती हैं। इस मौके पर जलाशयों पर सामूहिक अनुष्ठान भी होते हैं। इस अनुष्ठान के आधार पर यह कहना कि 'राजस्थानी लोग जलाशयों पर जाकर अपने समूह में त्योहार मनाते हैं' - अर्द्धसत्य तो होगा ही - तथ्यात्मक अशुद्धि भी होगी।

कुल मिलाकर अध्ययन बेहद मूल्यवान है, लेकिन प्रस्तुति उतनी ही असावधान। ◆

पुस्तक : मुख्यधारा शिक्षा में दलित भेद
संपादक : भरत, राजाराम भादू
प्रकाशक : आधार प्रकाशन पंचकूला
मूल्य : 250 रुपये (सजिल्द)